कवि निशंक के काव्य में प्रकृति का मनोरम चित्रण

डा. मुन्नी चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, नागालैंड विश्वविद्यालय
कोहिमा कैंपस, मेरिमा, नागालैंड - 797004

डा. रमेश पोखरियाल 'निशंक' आज के सर्वाधिक चर्चित कवि हैं। इन्होंने अनेक किताबों की रचना की है। काव्य इनका प्रिय विषय रहा है। लेखकों को प्रकृति हमेशा आकर्षित करती रही है। इन्हें भी प्रकृति ने आकर्षित किया है। परिणामस्वरूप, इनकी रचनाओँ में भी प्रकृति दिखाई पड़ती है। दरअसल, प्रकृति का कैनवस विशाल है और उसकी विशालता में मनुष्य और वह भी एक व्यक्ति बहुत छोटा है। इसीलिए प्रकृति को समूल रूप से किसी रचना में किसी कवि को समेट पाना न तो संभव है और न ही उसके वश की बात ही है। रचनाकार प्रकृति के बहुत छोटे रूप को ही छू पाता है। छोटे ही रूप को सही पर कवि प्रकृति को छुए बिना नहीं रहता। दरअसल, वही है जो कवि को पहली बार आकर्षित करती है। वही है जिसके कारण कवि एक विशाल ह्रदय का स्वामी बन पाता है। मनुष्य धीरता, गंभीरता, विशालता, चपलता, संवेदनशीलता, हंसी, रूदन - सब कुछ प्रकृति से ही सीखता है। मनुष्य उसी की प्रतिच्छवि को या तो व्यक्ति पर आरोपित करता है या व्यक्ति की प्रतिच्छवि को प्रकृति पर आरोपित करता है। इस आरोपन में इतना तो तय है कि प्रकृति मनुष्य को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। कवि जितना संवेदनशील होता है, वह उतना ही उसकी प्रतिच्छवि को समेट पाता है और शब्द देने में सक्षम साबित होता है। मनुष्य चाहे जितना बदल जाये, पर प्रकृति से बिलकुल कटकर अलग नहीं रह सकता। यही उसकी नियति है। कवि भी प्रकृतिस्थ होता है।
इस विवेचना के केंद्र में कवि की दो काव्य-कृतियां हैं - 'भूल पाता नहीं' और 'अंधेरा जा रहा है'। मैं इन्हीं दोनों काव्य-कृतियों पर केंद्रित रहूंगा। 'भूल पाता नहीं' कवि की चुनिंदा गीतों का संग्रह है और 'अंधेरा जा रहा है' उनकी क्षणिकाओं का संग्रह है। प्रसंग में उनकी अन्य कृतियां भी होंगी। उनकी रचना 'नवांकुर' में आये प्रकृति-चित्रण के संबंध में करुणाशंकर उपाध्याय ने लिखा है कि कवि के मन पर उत्तराखंड की प्रकृति का गहरा प्रभाव है। उन्हीं के शब्दों में, "कवि के मन पर उत्तराखंड की अनंत रमणीय प्रकृति का गहरा प्रभाव है, जिसके कारण वह उन्मुक्त होकर गीत गाना चाहता है"[1]। दरअसल, उन्मुक्तता असीम प्रेम की गहराई से निकल कर आती है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो। कवि निशंक के काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों का चित्रण मिलता है, जो विविधरंगी है। अब विस्तार से देखिये -

प्रकृति के प्रति गहरा विश्वास - प्रकृति सबको भाती है। वह सबको लुभाती है। जिसकी जैसी भावना होती है, वह प्रकृति से वैसा ही लेता है और अपना उद्गार व्यक्त करता है। वैसे प्रकृति के प्रति अभिव्यक्ति निरापद भी है। किसी को कोई ऐतराज नहीं होता। इसलिए कवि प्रकृति के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करने को स्वतंत्र होता है। यही स्वतंत्रता तो उसको चाहिए होती है। कवि को पूरा विश्वास है कि प्रकृति के सारे जीव-जंतु ही नहीं, जड़-चेतन सभी कुछ-न-कुछ अभिव्यक्त तो जरूर करते होंगे। कोई माने या न माने लेकिन वे सभी कुछ-न-कुछ अभिव्यक्त जरूर करते हैं। 'कुछ कहते तो होंगे' गीत इसी की अभिव्यक्ति है। कुछ पंक्तियां देखिये -

भंवरे आके फूलों से कुछ कहते तो होंगे
फूल की खुशबू को वो लेते तो होंगे

खिल उठी कलियां कंवल की
उसके छूने से
आयी जो किरणें वो
उस अम्बर के कोने से
खिलखिलाकर धरती भी हंसती तो होगी
ओढ़ के चुनरी फूलों की सजती तो होगी
.....
भीगती धरती खुशियों से
झूमती तो होगी
बूंद बारिश की माटी को
चूमती तो होगी[2]

भंवरे, फूल, खुशबू, कलियां, कंवल, किरण, अम्बर, धरती, आसमां, बूंद, माटी, चुंबन आदि शब्दावलियां नैसर्गिक प्रकृति की अनुपम छटा को अभिव्यक्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ते और संवेदनशील कवि इनसे अपनी मनचाही चित्र-बिंब उत्कीर्ण करवा ले जाता है। यही तो उसकी सफलता का राज है।

'धन्य-धन्य भारतवासी' गीत में कवि वृक्ष, शिखर, सरिता और लताओं पर गर्व करता है। हिमालय देवात्मा है और गंगा जगत की प्राण है। भारतवासियों को इन चीजों पर अभिमान है। रिमझिम वर्षा और घनघोर कुहासा कवि के लिए मधुमय मौसम लेकर आता है और इसका सोया प्यार उमड़ पड़ता है। 'उमड़ रही है प्रीत' गीत कवि के दिल को बेकाबू कर देता है। प्यार जैसी नैसर्गिक नेमत का भाव जो वक्त के थपेड़ों से थक कर कहीं कोने में सोया पड़ा था - अचानक रिमझिम बारिश से जाग जाता है और कवि को बेचैन कर जाता है।

प्राकृतिक उपादान बनने की अपील - प्रकृति सभी जीव-जंतुओं व जड़-चेतन को बिना किसी भेदभाव के अपना प्यार लुटाती है। वह मनुजों जैसा क्षुद्र नहीं है, छोटा नहीं है। उसके पास जो भी है वह सभी पर लुटा देती है। उसे अपना सब कुछ लुटा देने में तृप्ति मिलती है। मनुजों को उससे सीखने की जरूरत है। मनुज न केवल उससे सीखे बल्कि वैसा ही बन जाये और वैसा बनकर ही मानव का कल्याण करे। मनुज जब तक स्वार्थ-मुक्त नहीं हो जाता वह किसी का भला नहीं कर सकता। उसमें जब तक भेद की भावना रहेगी वह सभी को समभाव-दृष्टि से मनुज को देख ही नहीं सकता। इसलिए कवि अपील करता है कि मनुज दिलों को जीत ले। कैसे? आइए देखिए -

सरसराती हुई बयार बनिये
खिलते गुलशन की वो बहार बनिये
बिखरे मोती को जो पिरो ले
आप धागा वो प्यार बनिये
.....
कर दे शीतल जो धधकते मन को
आप रिमझिम-सी वो फुहार बनिये[3]

'जलकण बने' गीत में कवि संदेश देता है कि हमें जल-कण बन जाना चाहिए और ऐसा करके हमें सभी को प्राण-दान देना चाहिए। इसी से देश की शान बढ़ेगी। 'शक्ति पायें' गीत में सलाह देता है कि जहां कहीं भी अंधेरा हो वहां सूर्य से तेज लेना चाहिए और जो दृष्टि-बल से हीन हैं उन्हें विजन देने की बात करता है। दरअसल, कवि की दमित इच्छा है कि वह देश और देशवासियों के लिए बहुत कुछ करे। इसी से प्रेरित हो उसने अपने अनेक गीतों में इन भावनाओं की अभिव्यक्ति की है।

कवि फूलों की डालियों से बात करता है। अब उसे प्राकृतिक उपादान कवि की तरह एक मनुज बन चुका है। दरअसल, यह भावना का आरोप है। संवेदनशील व्यक्ति जब जिस परिस्थिति में होता है, वह अपने जैसा ही व्यक्ति की तलाश कर लेता है और इसके लिए प्रकृति का असीम क्षेत्र ही पास होता है। असल में, व्यक्ति इतना छोटा बन चुका है कि वह अपने जैसे मनुजों में तलाश नहीं पाता। उसे मूक प्रकृति ही चेतन बन कवि की भावनाओं की अभिव्यक्ति बन जाती है। 'डाली' नामक गीत में कवि डाली से बात करता हुआ दिखता है। वह कहता है –

प्रफुल्लित हो झूम रही,
बता आज क्या लायी है?
चुपके-चुपके कान में कह दो,
कौन खुशी वह आयी है[4]?

उसे आश्चर्य होता है कि कल तक तो वह मूक-गूंगी खड़ी थी, पर आज पुष्प लिये खुशियों से जड़ी खड़ी है। वह पूछता है कि क्या किसी ने छीन लिये थे उसके गहने या किसी ने आज उसे सजा दिया है? कहता है कि उसने कवि पर फूल डालकर व्यर्थ में क्यों रोक लिया है? वह यहीं नहीं रुकता। आगे वह कहता है कि रोक लिया है तो उसे संग चलना होगा और नीरव मनों को अमृत रस देना होगा। दरअसल, कवि डालियों पर अपनी मनोभावनाओं का आरोप लगाकर अपनी तुष्टि करता है। प्रकृति वह खुला क्षेत्र है जिस पर जो भी आरोप लगाये और उत्तर अपने मनोनुकूल पा ले। प्रकृति चूं-चपड़ नहीं करती। यहां छायावादी कविता की प्रतिध्वनि साफ सुनाई पड़ती है।

गांव से प्यार – कवि को उत्तरांचल के गांव बहुत प्यारे हैं। दरअसल, प्रदूषणों के इस दौर में भारत के शहर अब स्वस्थ जीवन-शैली के केंद्र नहीं रहे। ऐसे में गांव ही एकमात्र जगह हैं, जहां शुद्ध हवा-पानी और शोरमुक्त वातावरण आज भी उपलब्ध है। गांव के लोगों को गंवार कहने वाले अब उन्हीं की शरण में नतमस्तक हो रहे हैं। श्रमजीवियों ने गांव को बेहतर बनाया हुआ है। हालांकि वहां भी शहर की आबोहवा पहुंचने लगी है, फिर भी शहर से बेहतर है। ऐसे में, स्वाभाविक है कि एक संवेदनशील व्यक्ति इन बदलावों से परिचित हो और उसकी मुखालफत करे।

कवि अपने उत्तरांचल के गांवों से काफी प्रभावित है। उसे वहां की धरती, गांव-घर, कोयल, नदियां, फूलों की घाटियां आदि से गहरा प्यार है। वह प्रकृति को निहारते हुए उसकी छटा पर मोहित हो जाता है। वह कहता है कि घाटी पहाड़ की चोटी में फैले हुए हैं। ये सबके मैले मनों को धोते हैं, तारे आकाश में आ लगते हैं। इनकी क्रीड़ा अद्‌भुत लगती है। इनकी देश की रक्षा की भी चिंता है। नदियां और झरने चट्टानों को साफ करते हुए झर-झर स्वर में बहते हैं। कोयल कूकती है, पवित्र नदियां मुक्त बहती हैं। वह धरती गंगा-जमुना की धरती है, जहां स्थित बदरी-केदार पर दुनिया भर के लोग मरते हैं, और फूलों की घाटियां तो मन को हर लेते हैं। कुल मिलाकर, कवि उत्तरांचल की गंवई-प्राकृतिक छटा पर मुग्ध है। देखिये कुछ पंक्तियां –

हैं घाटी-चोटी में फैले,
धोते हैं सबके मन मैले।
लगते हैं आकाश में तारे,
उत्तरांचल के गांव हैं प्यारे[5]।

शहरी जीवन कलुषता, दूषितता, बर्बरता, प्रतिशोध, स्वार्थ, आडम्बर आदि प्रवृत्तियों का प्रतीक है। कवि इन सबसे तंग आ चुका है। वह इनसे मुक्ति के लिए छटपटाता है। मुक्ति की चिराकांक्षा उसे गांव में ही दिखती है। इसीलिए वह अपने मनोनुकूल लोगों का आह्वान करता है और कहता है कि सब गांव की ओर लौट चलें। गांव में ही चिर शांति दिखती है। वहीं असली जीवन का सूत्र है जहां

कोई छल-प्रपंच नहीं है। वह बताता है कि गांव की राहें उसकी बाट जोह रही हैं, नदियां व्याकुल हैं, पवन के झोंके ठहर गये हैं और कलियां भी मुरझा गई हैं। ईर्ष्या की लपटों से बचना है तो तरू की छांव में जाना ही होगा, जो गांव में ही बसता है। 'आ अब गांव चलें' गीत में कवि लिखता है –

बाट तुम्हारी राह जोहती, नदियां हैं अकुलाई,
पवन के झोंके तो ठहरे हैं, कलियां भी मुरझाई।
ईर्ष्या की लपटों से बचकर तरू की छांव चलें,
छोड़ सभी आडम्बर जग के आ अब गांव चलें[6]।

कोरोना ने सभी निश्छल लोगों को अपने गांव लौटने पर मजबूर कर दिया है। इस संकट ने बता दिया है कि शहर कितना क्रूर और हृदयहीन है। वहां मनुष्यों का जंगल है, जिसमें कठोरता, स्वार्थपरता और हृदयहीनता का बोलबाला है। मनुष्य एक मशीन बन चुका है, जहां मानवीय संवेदनाएं खत्म हो चुकी हैं या यूं कहें कि मनुष्य मनुष्य नहीं रह गया है। वह निरा पत्थर बन चुका है। गांव ने अपने करोड़ों बच्चों को गोद में समेटकर उन्हें एक नयी जिंदगी दी है। कोरोना ने आकर धरती के मनुजों की पहचान करा गया है कि कौन मनुष्य रह गया है और कौन जानवर बन चुका है। ऐसे में, कोरोना करोड़ों भारतीयों की 'शुक्रिया' की पात्र बन चुकी है।
अब गांववासी जाग गये हैं। गांव की हालत उनसे अब देखी नहीं जाती। इसलिए वे हाथ में मशाल लेकर उठ गये हैं और साथ मिलकर चलने लगे हैं। पहले गांव में क्या नहीं था, लेकिन सब कुछ शहर बनाने के चक्कर में बर्बाद कर दिया गया। पर अब ऐसा नहीं होगा। कवि गांव की दुर्दशा का चित्रण तो इस गीत में करता ही है, साथ ही उसे बचाने की मुहीम में भी खड़ा हो गया है। 'बढ़ चले हम ग्रामवासी' गीत इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।
गांव कैसा हो – कवि की परिकल्पना अनुपमेय है। 'खुशियों की बरसात हो' कविता में वह लिखता है –

तुम हमेशा खुश रहो,
सफलता की हो बयार
उसमें बहो।
दूर तक भी
कभी दुख की न छांव हो,
जहां हो
बरसात खुशियों की
वह
सुंदर-मनोहर
मनभावन तुम्हारा गांव हो[7]।

दरअसल, यह एक आदर्श गांव की परिकल्पना है। यह कवि की नई सोच का नतीजा है। वह चाहता है कि गांव फिर से गुलजार हो जाएं और गांववासी खुशहाल हो जाएँ।

भूकंप की त्रासदी का चित्रण – कवि जहां प्रकृति पर मुग्ध है, वहीं प्राकृतिक त्रासदी से व्यथित भी है। कुछ साल पहले वहां आये भूडोल ने पूरे उत्तरांचल को हिला कर रख दिया था। कवि उस मंजर को देखकर व्यथित हो जाता है। उसका हृदय आर्तनाद कर उठता है। वह लिखता है – घोर त्रासद भूकंप पहाड़ पर आया था। चारों तरफ मौत का साया था। घर-महल सब ढह गये थे, जवानियां सो गई थीं, यहां-वहां धरती फट गई थी और विकलता में रो रही थी। खेत-खलिहान रो रहे

थे, कहीं बच गई मां और बेटे बिलख रहे थे, कहीं नवजात बालिका दूध को बिलख रही थी। खंडहरों की छाया ने भी क्रूर काल को ले आया था, मौत का तांडव दिखाती मृत्यु भी हंस रही थी और लाशों के बोझ से धरा जहां-तहां धंस रही थी। ऐसा लग रहा था मानो किसी ने मौत को चीख कर पुकारा है। पंक्तियां देखिये –

मौत का तांडव दिखाती
मृत्यु भी थी हंस रही,
लाशों के बोझ से धरा
जहां-तहां थी धंस रही।
मृत्यु को मानो किसी ने, चीख कर पुकारा था,
भूकंप घोर त्रासदी का, पहाड़ पर आया था।[8]

इस त्रादसी का चित्रण उसने 'भूचाल' नामक कविता में भी की है।

मुश्किलों पर विजय पाने का संकल्प – कवि जहां भूकंप की त्रासदी से बिफर उठा है, वहीं उसे उस पर विजय पाने की उद्दाम लालसा भी है। वह संकल्प करता है कि लाख मुश्किल क्यों न आये, इंसान को संकल्प कर उठ खड़ा होना चाहिए। कितना भी बड़ा तूफान क्यों न आये, इंसान को उम्मीद के दीये जलाते हुए आगे बढ़ना चाहिए और इस तरह धरती पर फिर से स्वर्ग लाना चाहिए। संकल्प लेकर काम करने से बड़े-बड़े काम बन जाते हैं। यह काम इंसान को खुद ही करना पड़ता है। मदद के आने वाले हाथ कम पड़ जाते हैं, लेकिन जब खुद इंसान अपनी मुक्ति का रास्ता बनाने लगता है तो जीत निश्चित हो जाती है। बुद्ध ने कहा था, 'अप्प दीपो भव' – अपना दीपक आप खुद बनें। 'कोई मुश्किल नहीं' गीत में कवि लिखता है कि दुखों से मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति को खुद ही उठ खड़ा होना चाहिए। वह पूरी दुनिया को दिल में बसा ले तो क्षितिज को पाने में भी कठिनाई नहीं होती। भूकंप के त्रासद वक्त में किसी के चेहरे पर उदासी न रहे। इसके लिए जरूरी है कि इंसान को हमेशा खुशियों के गीत गाते रहना चाहिए और लोगों की सेवा कर अमर हो दिलों में सदैव गूंजना चाहिए। किश्ती लेकर जलधि से टकरा जाना चाहिए। इस तरह कहीं न कहीं किनारा अवश्य मिल जाता है। कुछ पंक्तियां देखें –

दुखों का जहर भी पीकर स्वयं ही
खुशियों की रिमझिम वर्षा बहाना,
पूरी दुनिया को दिल में बसा तो सही
कोई मुश्किल नहीं है, क्षितिज को भी पाना[9]।

मुक्ति की राह में अकेले चलने वालों के लिए कवि का संदेश है कि वह अकेला नहीं है, उसके लिए तो पूरा मेला लगा हुआ है। उसे ओस-कण ले स्वर्णिम किरणें हर सुबह जगाती हैं, सूरज तेज देने अपने पास बुलाता है और शीतल पवन गोद में ले सुलाता है। सांझ की सुहानी वेला लोरी फिर-फिर सुनाती है और सुबह की निश्छल हंसी साथ-साथ गुनगुनाती है। सुबह-दोपहर-शाम सब अनोखे और प्यारे लगते हैं। इसलिए कोई इंसान इस दुनिया में अकेला नहीं है। उसके साथ तो पूरी कायनात है। हां, उसे अकेले चलने भर की देर होती है। कविवर रवींद्रनाथ टैगोर ने ठीक ही लिखा था – 'एकला चोलो रे'। 'तू अकेला नहीं' गीत इसी भावना को परिपुष्ट करती है।

बसंत से जल्दी आने का इसरार – ऋतुओं में बसंत सबसे प्यारा है। इसके आते ही जड़-चेतन में एक नई स्फूर्ति का संचार होने लगता है। धरती हरी-भरी दिखती है। चारों तरफ एक रूमानियत और रोमांचकारी अहसास की मौजूदगी दिखती है। जीव-जंतुओं में एक नया जोश दिखता है तथा धरती

अल्हड़ युवती-सी दिखती है। फूल गदराकर खुशबू को उड़ेल रहे होते हैं और हवा उसे सुदूर दिगंत तक कोने-कोने में पहुंचा देता है। भंवरे पागल-से हो फूल को चूमने और दुलारने पहुंच जाते हैं। मनुष्यों की भी यही गति है। कवि भी पीछे नहीं होते। कवि निशंक 'हे बसन्त! जल्दी आना' में इसरार करते नजर आते हैं। वे कहते हैं कि सोये हुए जीवों को जगाने बसंत तुम मधुकर बन जल्दी आना। आखिर, बसंत जैसी स्फूर्ति देनेवाली, नवजीवन का संचार करने वाली ऋतु को कौन फिर-फिर नहीं जीना चाहेगा! कवि की प्रतीक्षा काटे नहीं कटती। इसलिए वह इसरार करने लगता है –

जब-जब भी पतझड़ आया,
डाल-डाल खाली पाया।
तब नव जीवन नयी प्रेरणा,
नयी स्फूर्ति भर लाया,
घुटनभरी तड़पी श्वांसों ने,
तब उन्मुक्त हो गीत को गाया,
अंधकार तनिक न आये,
अब ज्योति पुंज को लाना,
हे बसन्त! जल्दी आना[10]।

मधुवन का दर्शन – खुद से प्यार बड़ी अच्छी चीज है। यह वह नेमत है, जिसे पाकर लोग इठला पड़ते हैं। ऐसे व्यक्ति को तब शीशे की जरूरत नहीं रह जाती। ऐसे व्यक्ति को देखकर ठगा-सा रह जाने वाला आदमी शीशे के सामने खड़ा होकर तुलना ही नहीं करता बल्कि खुद को भी शीशे में समा देता है। दरअसल, इस नेमत को पाते ही इंसान पाजिटिव हो जाता है और दूसरों को भी रिचार्ज करता है। कवि अपने ही अंतरतम का मधुवन है और नन्दनवन का दर्शन है। वह और प्रकृति दोनों एकमेक-से हो गये हैं, बल्कि उसने खुद में ही प्रकृति को डुबो दिया है। तभी तो 'मैं मधुवन दर्शन' में कहता है –

कटु कठोर नव कोंपल में,
संवेदन की धड़कन बन,
प्रतिमन को हर्षित करने,
गया मेरा अकलुषित मन,
जो ह्रदय में समा गया है
वही भाव अपनेपन का,
मैं दर्शन हूं नन्दनवन का[11]।

वह प्रगति के गीत का पहला छंद है, प्रदूषण का कालचक्र है, शीतल फव्वारों की झड़ी है, दिल का आभूषण है और सूने आंगन का दीप है। वह सुगंध को देता है, सौरभ बन गीत सुनाता है, अपनी अनुपम छटा बिखेर कर सबका मन लुभाता है और तिमिर मिटाने के लिए सदा ही जलने वाला जन-मन का दीप है। उसकी अभिलाषा तो श्रृंगार बन जाने की है। 'श्रृंगार बन जाता' की पंक्तियां देखिये –

प्रीति! मेरे गीत की, संगीत बन जाती अगर,
प्रात! मेरी जिंदगी का, श्रृंगार बन पाता अगर।
मुस्कराते पुष्प मेरे, सुरभि को लाते अगर,
पास ही गुंजार कर, भ्रमर भी आते अगर।
साधना में लीन मैं, अनुराग पा जाता,

लो! उन्मुक्त हो मैं, नृत्यकर मधुगीत गाता।

उसे अब चिंता नहीं है, क्योंकि चांदनी जो मिल गई है। इसलिए वह आगे बढ़कर मरे हुए लोगों को जीवित करेगा (निष्प्राण तन में)। वह अब कली बन गयी है। अब उसके चाहने वालों की भीड़ लग गई है। यह उसकी प्रसिद्धि का परिचायक है। देखिये 'मैं कली हूं' –

आज तो सूरज व चंदा
पास आ मुझको सजाते
दूर से आकर भ्रमर भी
झूमकर हैं गुनगुनाते
पाने मुझे हर पथिक भी
स्वांग ढेरों है रचाता
किंतु रक्षक रूप माली
है मुझे नित-नित बचाता
इस हरित उद्दान में मैं
राजकन्या-सी पली हूं
मैं कली हूं[12]।

बयार – बयार किसे नहीं भाता! व्यक्ति बयार की मधुर-शीतल सरसराहट को दामन में समेट लेना चाहता है। वह भी पूरब की तरफ से चलने वाली हो तो फिर कहना ही क्या! शीतल बयार जैसे ही देह को छूती है – देह के रोम-रोम पुलक-से सिहर उठते हैं, किसी के साथ होने को तरसाने लगता है। इसी बयार की परिकल्पना कवि की छोटी कविता 'बयार' में स्पष्ट झलकती है। देखिये –

ये फूलों का गुलदस्ता
तुम्हारा जीवन महकाए,
हर पंखुरी बन बयार सुगंध
जल-थल-नभ में छाए[13]।

कवि निशंक की प्रकृति-संबंधी कविताओं और गीतों की भाषा में लयात्मकता, तुकबंदी, मधुरिमा और लोच के दर्शन होते हैं। कई बार तो लगता है कि उनके गीत हृदय की गहराइयों से निकले हैं, जहां पाठक मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। शब्द-चयन में वे बहुत सावधानी बरतते हैं। लेकिन कई बार अनगढ़ता खल जाती है और लगता है कि वहां सतर्कता बरती जाती तो कुछ गीत वाकई अच्छे हो जाते। बावजूद इसके, उनकी रचनाओं की भाषा अच्छी है।
कवि निशंक अपने प्रकृति-प्रेम से निश्चित रूप से जाने जायेंगे। हालांकि प्रकृति संबंधी उनकी रचनाएं संख्या में बहुत कम हैं, लेकिन बात में विस्तार है। सफलता इसी में है कि बात में दम है। मैं समझता हूं, कवि निशंक इस दृष्टि से भी पाठकों में पसंद किये जायेंगे। वे प्रकृति-परख का दिल भी रखते हैं।

संदर्भ-सूची –

1. अरूण, योगेंद्रनाथ शर्मा - डा. निशंक के काव्य में इंद्रधनुषी चिंतन, लेख – 'कविता का श्रृंगार – नवांकुर' – करुणाशंकर उपाध्याय, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर – उत्तर प्रदेश, 2019, पेज – 87.
2. निशंक, रमेश पोखरियाल – भूल पाता नहीं, गीत–'कुछ कहते तो होंगे', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पेज –39.

3. वही, गीत – 'जीत ले दिलों को', पेज – 47.
4. वही, गीत – 'डाली', पेज – 121.
5. वही, गीत – 'उत्तरांचल के गांव', पेज – 71.
6. वही, गीत – 'आ अब गांव चलें', पेज – 117.
7. निशंक, रमेश पोखरियाल – अंधेरा जा रहा है, कविता –'खुशियों की बरसात हो', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पेज – 29.
8. निशंक, रमेश पोखरीयाल – भूल पाता नहीं, गीत – 'भूकंप त्रासदी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पेज – 72.
9. वही, गीत – 'कोई मुश्किल नहीं', पेज – 80.
10. वही, गीत –'हे बसन्त! जल्दी आना', पेज – 122-123.
11. वही, गीत –'मैं मधुवन दर्शन', पेज – 124.
12. वही, गीत –'मैं कली हूं', पेज – 137-138.
13. निशंक, रमेश पोखरियाल – अंधेरा जा रहा है, कविता –'बयार', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पेज – 30.